कहानी

# रोशनी की लहर

डॉ.श्रीमती कमल चतुर्वेदी

**सदानन्द** और कान्ता की रात तमाम बेचैनियों में जैसे कट ही नहीं रही थी. जब से उनके इकलौते बेटे की अमेरिका के न्यूयार्क शहर में जॉब मिलने की सूचना मिली थी तभी से वे दोनों गुम सुम बेचैन से हो रहे थे. दीपावली के ठीक दो दिन बाद मधुर के न्यूयार्क जाने की बात सोच–सोच कर उनका उत्साह फीका पड़ गया था. बहू शिखा की ससुराल में पहली दीपावली थी और सभी बेहद उमंग से भरे हुए तैयारियाँ कर रहे थे.

सुबह से ही कान्ता ने बड़बड़ाना शुरु कर दिया था– ऐसी तरक्की से क्या......... वहाँ गया तो बस फिर, कहाँ के बाप और कहाँ की माँ ..... मेरी तो कोई सुनता ही नहीं........ बेचारे सदानंद अपनी अधीरता छुपा कर इधर उधर देखते........ अरे तुम भी कान्ता, अब जमाना बदल गया है वहाँ भी सब अपने जैसे ही हैं ........ तुम नाहक ही.........

उन्हें याद आया कि संगीत के कार्यक्रम में एक बार मधुर गया था और रात भर नहीं आया था तो वे दोनों बरामदे में ही बैठे हर आहट पर चौंकते थे. अब वे क्या करेंगें . उस दिन तो मधुर वारिश के मारे दोस्त के घर रुक गया था, पर अब न्यूयार्क से वह साल में एक बार भी आ पाएगा या नहीं...... ठीक भाई दूज की उसकी फ्लाइट है.........हे भगवान आज ऐरोप्लेन में भी बैठना निरापद नहीं है........

कान्ता बार–बार उनसे कहती........ अरे कैसे बाप हो........ इकलौता बेटा है, उसे रोकते क्यों नहीं ........ और पराई बेटी भी जाएगी उसके साथ........ कल को कुछ हो गया तो उसके घर वाले क्या सोचेंगे कहते कहते कान्ता आँसू पोंछने लगती थी........ अपने दुख को भी वे कहाँ तक पीछे ढकेलते– सब अच्छा होगा ....... काहे बुरा सोचती हो........ कहते हुए वे खुद ही घबरा जाते थे.

उस दिन कान्ता और बहू चुपचाप लक्ष्मी पूजा की तैयारी करने में लगे थे. सहसा मधुर से सदानन्द ने पूछ ही लिया था– तो फिर क्या सोचा बेटा ..........जाना क्या जरूरी है? बेटा यह अपना घर है, अपना देश है....... अपनी मिट्टी अपनी होती है बेटा...... झिलमिलाती रोशनियों की चकाचौंध तुम्हें आज लुभा रही है........ पर अपना यह मिट्टी का दिया बेटा........ इसकी बराबरी नहीं है........ वहाँ न दीवाली न दशहरा ....... और के बेटा वहाँ हम भी नहीं मिलेंगे ....... अब हम भी बेटा कितने दिन के हैं........ बस पापा, बार बार मुझे भाषण मत दो ....... मुझे जाना ही है...... किसको ऐसे मौके मिलते हैं? सदानंद इतना ही कह पाए थे ........ बेटा, जैसी तुम्हारी इच्छा ? हम तो बस........

दीपावली के पहले धनतेरस पर माँ दीपकों में तेल और बाती रखती जा रही थी. मधुर ने देखा माँ कुछ ही दिनों में बूढ़ी हो गई है. उसे गहनों से लदी हुई, चमकीली साड़ी वाली, दमकते चेहरे वाली माँ कहीं नज़र नहीं आई. थकी, हारी, अस्त, व्यस्त सी आँसू पोंछती, माँ ऐसा लग रहा था, जैसे दीपावली की नहीं, किसी दुःख की तैयारी कर रही थी.

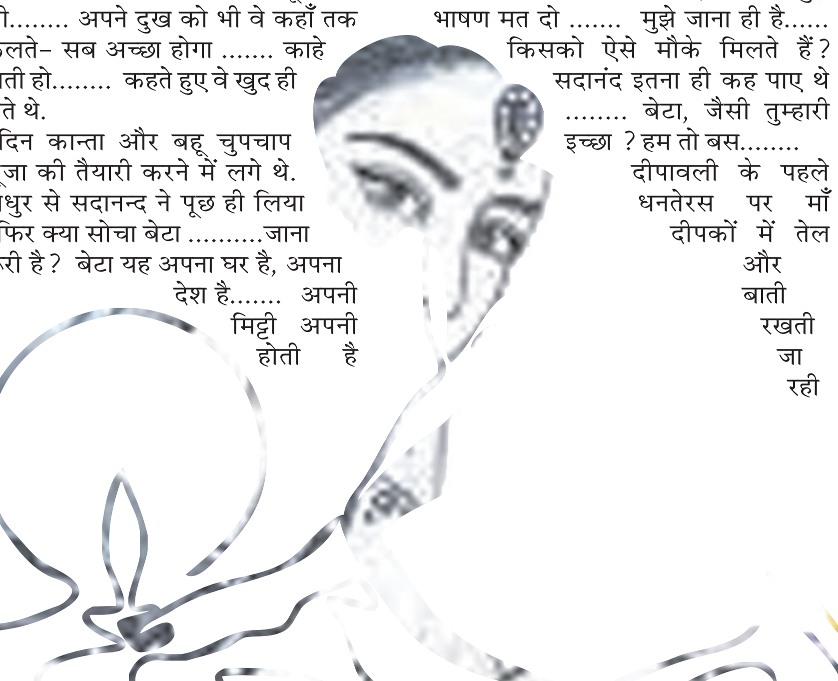

दीपावली के दिन भी कुछ चहल–पहल या उल्लास–उमंग सी नहीं लग रही थी. माँ ने उसे आवाज दी थी–...... मधुर, क्या कर रहा है.... दीपक आँगन में और छत पर तो जला कर लाईन से रख दे ....... इस बार क्या दिये भी मैं ही रखूँ ... मैं बेटा ऊपर नीचे अब नहीं हो पाऊँगी ..... थक गई हूँ....मधुर ने देखा था, माँ की आँखें ऐसा कहते हुए पूरी तरह पूरे वेग से छलक उठी थीं.

भावुक हो उठा था वह भी ........ अभी से माँ का रो रोकर ये हाल है, पिताजी बेचारे एकदम बूढ़े लाचार से उसे देखते रहते हैं...... भूल गया वह न्यूयार्क का आकर्षण, ऊँचे वेतन का लोभ और विदेश की शान ........ माँ–बाप से बढ़ ?कर क्या है......... उसे बचपन से लेकर अब तक के दृश्य याद आने लगे थे........ वह माँ के हाथ से दीपक की थाल लेते हुए बोला....... दिये मैं नहीं रखूँगा ........ तुमने ऐसा सोचा भी कैसे ! हद है, माँ, लाओ मैं अभी रखे देता हूँ........

छत पर दिये रखते हुए उसे लगा ये दीपक रोशनी की एक लहर बन गए हैं और उजाले की नदी उसके आसपास बह रही है. नीचे आकर उसने माँ से कहा था– माँ तेरे चेहरे पर ये आँसू अच्छे नहीं लगते ....... रोशनी की लहरें देखना चाहता हूँ ........ और तू भी कैसी पागल है, उजाला कभी तुमसे दूर हुआ है ........ अब छोड़ रोना धोना और वही चमकीली साड़ी पहन कर तैयार हो जा....... लक्ष्मी पूजन का समय हो रहा है....... मैं पिताजी से भी कहता हूँ.

कविताएं

## बूंद

शर्मिला ठाकुर

अश्क बनकर आँखों से बह गई
बिन कहे बहुत कुछ कह गई
थी सहस्त्र धार जिसे दिखा समझा वही
पढ़ ली हर एक बात जो थी अनकही
वरना कहने को क्या थी बूँद ही तो थी
आँसू की बूँद ही तो थी बह गई

वृहद, विशाल, अपार, अछोर यही शोर है,
कर गुमान थी अकेली, सरलता समुद्र है
एक–एक कर बनी तभी तो अक्षुण्ण है
मिला इससे जिस घड़ी जीवन हुआ पूर्ण है
वरना कहने को क्या थी बूँद ही तो थी
पानी की बूँद ही तो थी समुद्र बन गई

बंद दोनों ओर से बिना किसी डोर से
नरम से सख्त हो गई
और भी निखर गई देख ना सका कोई
चुप से मोती बन गई
कर लिया श्रृंगार जो और भी संवर गई
वरना कहने को क्या थी बूँद ही तो थी
स्वाति की बूँद ही तो थी सीप में मोती बन गई

# ‘तनाव अब बेअसर’ : सहज निदानों की तरफ़ !

पुस्तक चर्चा

प्रकाशकांत

**पुस्तक** ‘तनाव अब बेअसर’ की यह स्थापना महत्त्वपूर्ण है कि आज ‘मानसिक स्वास्थ्य की चुनौती जितनी बड़ी है, उसके समाधान उतने ही सहज हैं !’ पुस्तक तनाव जो कि हमारे दैनिक जीवन का लगभग ज़रूरी हिस्सा मान लिया गया है उसके ऐसे ही समाधान सुझाती है जो सहज होने के साथ-साथ व्यावहारिक एवं सम्भव भी हैं. उनका इस्तेमाल करने के लिए किसी गंभीर साधना की आवश्यकता नहीं है. पुस्तक अपने बत्तीस छोटे-छोटे अध्यायों में आज के मनुष्य द्वारा आये दिन सामना की जाने वाली इस समस्या पर व्यावहारिक स्तर पर विचार करती है. ये छोटे-छोटे आलेख मूलतः आलेखों की तरह लिखे गये नहीं हैं. बल्कि मूलतः शिक्षार्थी आदि के सामने दिये गये प्रेरक उद्बोधन और मनोविज्ञान की ज़मीन पर उनसे किये गये ऐसे प्रासंगिक संवाद हैं जो आये दिन लगभग हर किसी को घेरने वाली तनाव जैसी समस्या से निपटने के रास्ते सुझाते हैं.

इनकी मुद्रा उपदेश देनेवाली क़तई नहीं है जो कि ऐसे मामलों में आमतौर पर देखने को मिल जाया करती है और जो काफ़ी सुलभ भी हुआ करती है! इन आलेखों में साथ बैठकर समस्या सुलझाने का भाव है! वहाँ समस्याओं को अस्वाभाविक रूप से सरलीकृत करने की कोशिश नहीं है. उनमें मनोचिकित्सक की दृष्टि है जो तनाव जैसी स्थितियों को किसी असाध्य या भयानक मनोरोग की तरह न लेकर एक ऐसी मनःस्थिति की तरह लेता है जिसका सामना सामान्यतः थोड़े या लंबे समय तक के लिए किसी को भी करना पड़ सकता है बल्कि करना भी पड़ता है. इनमें एक विशेष प्रकार का सकारात्मक दृष्टिकोण है. ऐसी सकारात्मकता जो जीवन ही नहीं बल्कि दूर-पास की पूरी दुनिया को एक व्यापक सकारात्मक ढंग से लेती है! इससे बहुत सारी मुश्किल लगने वाली चीज़ें भी आसान हो जाती हैं.

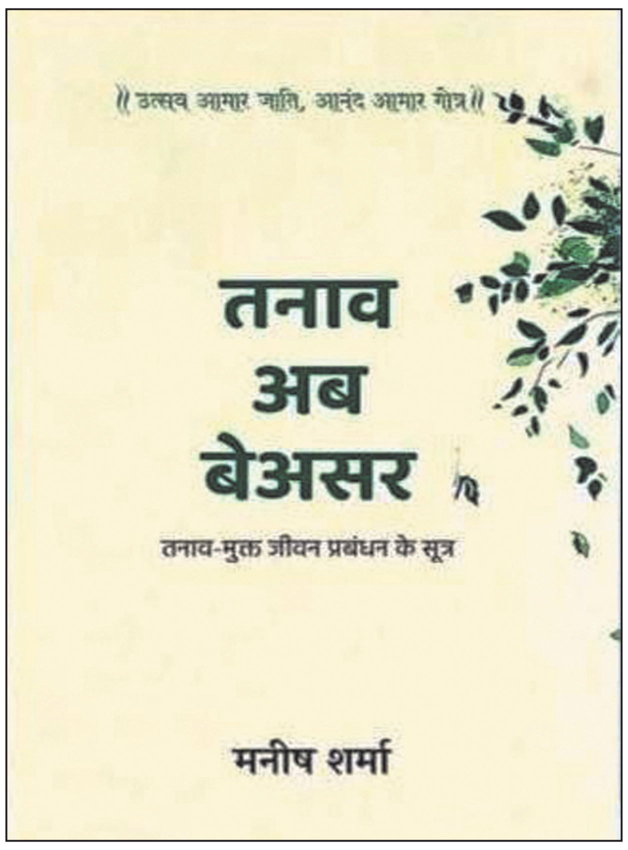


ये लेख तनाव के स्वरूप और उसके कारण, ऊर्जा-नियोजन, समय-प्रबंधन, की बात तो करते ही हैं साथ ही तनाव का साक्षात्कार, परीक्षा, महिलाओं के क्रिया-व्यापार, संवादहीनता, प्रकृति, अभिनय, ध्यान, कलात्मक गतिविधियों जैसी चीज़ों पर भी तनाव के संदर्भ में विचार करते हैं. और ऐसा करते हुए उन छोटे-छोटे उपायों को सामने रखते हैं जो दुष्कर, असामान्य और कठिन नहीं लगते बल्कि सहज, सम्भव और सरल दिखनेवाले होते हैं, जाने-पहचाने और दैनिक जीवन में सामान्यतः इस्तेमाल होते रहने वाले!

बेशक, जिस तरह की दुनिया बन रही या बनायी जा रही है, आम आदमी के जीवन में आने वाले अधिसंख्य तनाव उसी से जन्मे होते हैं. इसके बावजूद अकेले के स्तर पर उनसे कैसे निपटा जा सकता है, पुस्तक के आलेख इसी के तरीक़े सुझाते हैं. जो हमारी क्षमताओं में विश्वास तो जगाते ही हैं साथ ही परोक्ष रूप से जीवन की श्रेष्ठता में आस्था बनाये रखने के लिए प्रेरित भी करते हैं.

**तनाव अब बेअसर**
**(तनाव–मुक्त जीवन प्रबंधन के सूत्र)**
**मनीष शर्मा**
**मूल्य–150 रुपये**
**वेरा प्रकाशन, सांगानेर जयपुर (राजस्थान)**

## मकड़ी

गोपी नवीन

बुनती है
एक रहस्यमयी जाल.
फांसती है सुनहरा सूत
मजबूत सहारों पर.
घूमती है गोल- गोल
और अपने चार जोड़ी पैरों से,
तान डालती है
एक आकर्षक चक्रव्यूह.

बनाती है बड़े से बड़ा ,
लंबा - चौड़ा ,शटकोणीय मकड़जाल.
उसी पर पनपता है
उसका कैकून भी.
साथ ही फंसाना है उसे
अपना शिकार
इस सुंदर से फंदे पर.

जैसे शिकारी
शेर को भी फंसा डालता है
बुनकर एक ताना - बाना.
चेप और लासा फैलाकर
बना लेता है ,
उड़ते परिंदो को भी
अपना गुलाम.

अबोध कीट- पतंगों को ये
पता भी नही,
कि बुन लिया गया है
एक मजबूत फंदा,
और वे जकड़ लिए गए हैं
उस सफ़ेद पोश जंजाल में.
हटा भी दें उसके जाल को
कुछ कोशिश करके,
पर रातोरात बन जाता है
हर बार ,बार - बार,
एक नए तिकड़म के साथ.

जितनी बड़ी मकड़ी
उतना बड़ा षड्यंत्र.
आखिर उसका
आहार भी तो है ज्यादा
और भूख भी तो है तेज.

किसी लालची जमींदार की तरह
जाल पर भूखी निगाह जमाए
बैठे कभी- कभी,
वह फांस डालती है ,
अपनो को भी,
इस गूढ़ जालसाजी में .

मकड़ी तो मकडी है
बिछाएगी ही जाल.
मरते हैं,मरते रहेंगे सदा
कीट पतंगे फंसकर
और,
मरेगी एक दिन खुद वह भी,
इसी में.

लघुकथाएं

## दिवाली का अंधेरा

**वह** इतर प्रांत से आकर छत्तीसगढ़ के इस शहर के शान्त और भोलेभाले लोगों के मोहल्ले में बस गई थी. अपने दुस्साहसिक हरकतों की वजह से वह मोहेल्ले की स्वयंभू नेत्री बन गई थी. कम पढ़ी – लिखी महिलाओं के बीच तो जैसे उसकी तूती बोलती थी. छोटे– मोटे विवादों में उसकी अनिवार्य उपस्थिति रहती . दूसरों के फटे में टांग अड़ाने की वज़ह से वह बहुचर्चित हो गई थी. वह अपनी पहुंच और रसूख का धौंस जमाने से भी नहीं चूकती थी. बेखौफ होकर बेतकल्लुफी से वह दरोगा पुलिस से बतियाती रहती और उसकी उनसे खूब छनती भी थी. नुक्कड़ छाप छुटभइयों, मवालियों, मनचलों से भिड़ जाना उसकी आदतों में शुमार था . वैसे फूलन देवी और राखी सावंत के मिश्रित लक्षण उसके आचरण में देखने को मिलते थे. कुल मिलाकर वह बेहद चपल और चन्ट थी.

दीवाली की पूर्व सन्ध्या में,काली मंदिर प्रागंण में महिला मण्डल की एक गोष्ठी आयोजित की गई थी , उसी महाभागा की घनघोर अध्यक्षता में . दीप–पर्व की महत्ता और उसे मनाने के तौर तरीकों पर उसके प्रवचननुमा भाषण की धुआंधार बरसात हुई थी.

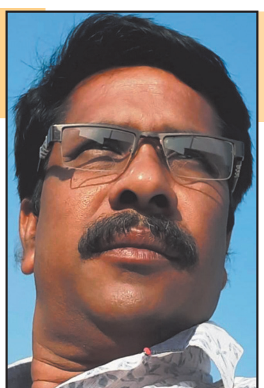

बसंत राघव

दीवाली की देर रात मुझे नींद नहीं आ रही थी, इसलिए मैं अपनी छत पर टहल रहा था. पटाखों के सिलसिलेवार तीव्र धमाकों से दिशाएं मानो कंझा गई हों, बीच – बीच में एटम बम पटाखों की तेज आवाजों से बचने के लिए मैं अपने कानों में अंगुलियां डालकर खड़ा हो जाता. तेज रफ्तार राकेट सर्र से मेरे सर के ऊपर से अन्तरिक्ष में ऊर्ध्वगमन करते हुए मुझे दिख जाते.

तभी अचानक नीचे गली में कुत्तों के भौंकने की आवाज से मेरा ध्यान बंटा. बालकनी में थोड़ा झुककर मैंने नीचे निगाहें डाली. तो सहसा एक विचित्र दृश्य से साक्षात्कार हुआ. वह अकेली महिला मुझे किसी गंभीर पहेली की तरह दिखाई दी. गली के आखरी सांसें गिन रहे दीयों को वह फूंक–फूंक कर बुझाते हुए अपनी झोली में डाल रही थी. अपने पैरों से बेरहमी से रंगोलियों को रौंदती हुई उस प्रगल्भा से मुखातिब होकर गली के एक दो कुत्ते भौंक रहे थे. मानो कह रहे हों अरी ओ चांडालिनी यह क्या गजब कर रही हो, जिंदा दीयों को मारकर अपनी झोली में तुम क्यों पाप भर रही हो ? बेचारे दीये तो उजाले बांटते हैं और तुम अंधेरा परोसने में तुली हुई हो. तुम चाहती हो अंधेरा कायम रहे. ताकि तुम्हारी काली सत्ता आबाद रहे . मुझे लगा अमावश्या की वह स्याह रात और भी घनी काली हो गई है.

## वापसी

**हम** एक शानदार रेस्तरां में बैठे थे. बैचमेट्स के गेट टूगेदर में. सब खुश थे. होते भी क्यों नहीं ? पूरे तिरालीस साल बाद जो मिले थे.

इस बीच केलो नदी का पानी बहुत बह चुका था. हम अपने बचपन की यादें , एक – दूसरे से साझा कर रहे थे. सुरेश, प्रताप से मेरी कुश्ती. पढा़ई में सबसे होशियार कौन ? सबसे ज्यादा बदमाश कौन ? होमवर्क नहीं करने पर क्लास से बाहर मुर्गा कौन बनता ? आदि–आदि. जिस तरह स्कूल से भागकर मैं जंगल की ओर चला जाता था, ठीक उसी तरह घर में बिना बताए ही हवाई चप्पल में दोस्तों के कहने पर यहां भागा चला आया था.

मैं ठीक उसके बाजू में सोफे पर बैठा हुआ था. सामने के सोफों में दोस्त विराजमान थे. मैं उस आवाज को बहुत गौर से सुनने की कोशिश कर रहा था, जिसे सुनने के लिए ही शायद यहाँ दौड़ा चला आया था. उसे जी भरकर एकटक निहारने की उत्कंठा मुझे बेचैन कर रही थी. बाजू में बैठने की वजह से यह इच्छा भी अधूरी रह गयी . सोचा , कम से कम उसकी रहस्यमयी आवाज ही सुन लूँ.

वह अपने थैले से रंगीन ताश के पत्ते और कुछ रंगीन कार्ड निकालने लगी. बगल में बैठी अनीता से उसने सभी दोस्तों को एक – एक कार्ड बांटने को कहा. फिर मोबाइल से गेम की शुरूआत हुई . लॉटरी की तरह तंबोला गेम , फिर लक्की गेम. वह इस गेम की डीलर थी. मोबाइल से निकले अंक को वह ज़ोर से पुकारती. हमें अपने कार्ड पर उस पुकारे गये नम्बर को खोजना होता. यदि नम्बर हमारे कार्ड पर होता तो हम उस नम्बर वाले खाने को पुश कर पीछे जाने पर उसे मोड़ देते थे. फर्स्ट फाइव कार्ड पर एक लाइन में पहले 5 नंबर काटने वाले को पुरस्कार मिलता.पहला पुरस्कार महेश शर्मा के हिस्से आया था . जब किसी खिलाड़ी के कार्ड के सभी 15 नंबर कट जाते, तो वह फुल हाउस विनर हो जाता . इस बार अजय गुप्ता विनर बना. वह अपने स्थान पर खड़ा हो गया. हवा में अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर उसकी तरफ देखते हुए वह जोर से चिल्लाने लगता है ...तंबोला ... तंबोला.

मैं कहीं और खोया हुआ था. मन ही मन एक ही बात को बार – बार दुहरा रहा था. ऐसा मैं जानबूझकर कर रहा था या फिर अनजाने में, कह नहीं सकता. जिसने भी मुझ पर गौर किया होगा , मेरे बावलेपन पर मन ही मन जरूर हँसा होगा. मेरी हालत दुष्यंत कुमार की गज़ल में आए उस पुल की तरह हो गयी थी जिस पर अभी – अभी कोई रेलगाड़ी धड़धड़ाती हुई गुजरी थी–

**तू किसी रेल–सी गुज़रती है**
**मैं किसी पुल–सा थरथराता हूं**
**मैं तुझे भूलने की कोशिश में**
**आज कितने क़रीब पाता हूं .**

मैं उस जर्जर पुल की तरह आज भी वैसे ही खड़ा हूँ. वह हँस – हँस कर सबसे मुखातिब हो रही थी पर दूर दूर तक मैं उनमें कहीं शामिल नहीं था. एक मौन पसरा था मेरे और उसके बीच. कुछ पन्ने फड़फड़ाने लगे थे हवाओं में. अचानक मैंने महसूस किया कि सभी मित्र मुझे अजीब– निगाहों से घूर रहे हैं. टेबल पर चाय आ चुकी थी. अपने हिस्से की चाय गटक लेने के बाद भी उसके स्वाद का अंदाजा मुझे नहीं हुआ. समय से पहले उस ख्वाबगाह से उस दिन मैं अपने घर न चाहकर भी लौट आया था.

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी , समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी